मूल्य : रु.15

पूर्णांक 181

संचेतना

सृजन, संवाद एवं विचार का माध्यम

3LJ

सन्ध्या छाया

मेरी बेचैनी खुद रास्ता बनाती है – इन्दु जैन

स्याह सलेट पर चाक से खींची लकीर - गुरचरण सिंह

कविता में संवाद शैली- गंगाप्रसाद विमल

कैलाश वाजपेयी - रेखा सेठी

नास्त्रेदमस की भविष्यवाणी का सच

गंगा प्रसाद विमल

इन्दु जैन : कविता में संवाद शैली

इन्दु जैन की कविताओं की दुनिया दूसरी जटिल दुनियाओं के मुकाबले ज़्यादा साफ, पारदर्शी और विविधवर्णी है। स्त्री विमर्श के हलचल के दौर में उनकी कविताएँ ज्यादा मानवीय, ज्यादा दायित्वपूर्ण और अपने समय से बतियाती हुई दिखाई देती हैं। इसी मायने में वे थोड़ा अलग-सी भी दिखाई देती हैं। यों महत्वपूर्ण यह नहीं, बल्कि यह है कि बेहद आत्मीय, ऊष्माभरी प्रतीति देने वाला यह कवि-कर्म विकसन के पड़ावों पर धीरे-धीरे खुलता है।

'जैसे जन्म दूर रहता है मृत्यु से/ सूर्य दूर रहता है अंधेरे से/ पंखों में झपट्टा भरे हुए/ दूर रहो उसी तरह/ मोटे पेट वालों/ दुनाली बंदूकों/ लंबी चाबुक वालों से/ दूर रहो.../'

'जन्म और मृत्यु' के विपरीत ध्रुवों की कवि-कल्पना पर गौर करें। इन्दु जैन 'जन्म' के अहसास को मृत्यु के विपरीत मानती हैं। और गहरे जाकर इस आशय की व्याख्या करें तो भारतीय चिन्तन के सनातनत्व में जन्म जैसे मृत्यु के विराम की फिर से चुनौती झेलने वाला तत्व है, उसे ही फिर से रुके हुए चक्के को गतिवान बनाना पड़ता है। स्त्रियों की दशा पर अपने ही ढंग से विचार किया है इन्दु जैन ने। उनकी 'नमक' शीर्षक कविता एक बहुचर्चित कविता है। प्रस्ताव और परिदृश्य वैसा ही है जिससे हम बखूबी परिचित हैं। हम भी देखते हैं कि 'पसीना पोंछती हुई औरतें/ दफ्तर जाती हैं।' नगरों और महानगरों के आर्थिक दबाव ने ही औरतों को दफ्तर भेजा हो- केवल यही कारण 'स्त्री विमर्श' के संदर्भ में पर्याप्त नहीं है। ज़ाहिर है दूसरे कारणों की तरफ भी ध्यान देना होगा। अगर इस मुद्दे को सीमित करना चाहें तो कह सकते हैं कि 'स्त्री' के स्वाभिमान से जुड़ी बीसवीं शताब्दी के समतावाद की पीठिका है यह। परन्तु इसे थोड़ा विस्तृति में देखना ज़रूरी होगा। केवल सीमित चौखटों में यह कहकर खारिज करने की मुद्रा प्रदर्शित करना उचित नहीं होगा कि दुनिया भर में औरतों ने अपनी पहचान बनाने की कोशिश की है। अनजाने में ही सही यदि सृजेता ने बहुआयामी भाव को ध्वन्यर्थक रूप से व्यक्त किया हो कि 'नमक से नमक बहाती है।' तो इसमें निष्ठा, आबद्धता, जुड़ाव के लोकानुभव हैं। इन्दु जैन ने एक तरह की संवाद शैली अपनी कविता में विकसित की है। 'कितनी अवधि' और 'सबूत क्यों चाहिए' संकलनों में उन्होंने अपनी अलग ही कथन शैली विकसित की है। स्त्री की तरह लिखना तो नैसर्गिक कहा जाएगा किन्तु इन्दु जैन ने कुछ कविताओं में पुरुष की तरह भी कहा है। शायद ऐसा वर्गीकरण समालोचना के लिए समीचीन नहीं माना जाता। इस खातिर इस प्रसंग में चर्चा नहीं हुई है। परन्तु मैं इन्दु जैन की शैली का यह बेहद व्यंग्यपरक, मारक हथियार समझता हूँ। पुरुष-प्रधान समाज में संबोधनपरक ऐसा प्रयोग विशेष अर्थ रखता है। और उसका निष्कर्ष है कि जरा स्त्री के कहे को भी देखो।

112, साउथ पार्क अपार्टमेंट्स, कालकाजी, नई दिल्ली-110019

रेखा सेठी

जैसा मैंने उन्हें जाना...

मेरे घर के सामने एक बगीचा है। मेरी बेचैन नज़रें वहां जिन्हें ढूंढती हैं वे अब वहां नहीं रहतीं। बहुत कुछ बदला-बदला सा है, फिर भी उनकी महक अब भी वहां है और उनके होने का अहसास मेरे आस-पास। जो लोग इन्दु जैन से एक बार भी मिले हैं वे अवश्य स्वीकार करेंगे कि इन्दुजी का अहसास उनके अस्तित्व से भी बड़ा है। उनकी महक, खुले बाल और बड़ी-बड़ी गहरी आँखें ऐसे सम्मोहित करती हैं कि आप जल्द उनसे छूट नहीं सकते। न जाने इन आंखों ने कितनों के दिल घायल किए होंगे! वैसे जैसा आकर्षण इन खुशबू-भरी अदाओं में है उससे कहीं घना आकर्षण उनके दिलो-दिमाग में है। ज्यों-ज्यों पास से जानिए उनकी मेधा और सृजन पर विमोहित होते जाइए... कवि की संवेदनशील दृष्टि और प्रखर बौद्धिकता का अद्भुत संगम, भाषाओं पर ऐसी पकड़ कि आप चकित रह जाएँ।

मैंने इन्दुजी को बहुत करीब से देखा है। इन्दुजी को जानना उनकी आँखों में बसे भरे-पूरे संसार को जानना है। उनके अनेक रूप मेरी स्मृतियो में बसे हैं- टीचर, साथी व्यक्ति और कवि- सब एक दूसरे में घुले-मिले। इन सभी रूपों में कोई अंतर्विरोध नहीं। उनका कवि-मन और व्यक्ति-मन समान प्रतिबद्धताओं से बंधे हैं। इसलिए उनमें पारदर्शी खरापन है। उनके सभी करीबी पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि वे ही उन्हें सबसे अच्छी तरह जानते हैं।

जब मैं उनकी छात्रा थी तब की अनेक छवियां मेरे मन में बसी हैं- मुग्ध करता भावपूर्ण चेहरा, शब्दों से अधिक वाचाल काजल बसीं आँखें, कानों की बालियाँ- जब कुछ कहने को हिलतीं तो बालियों का अक्स चेहरे पर पड़ता, बार-बार ध्यान टूट जाता, मैं सोचती- 'सच, टीचर को इतना सुंदर भी नहीं होना चाहिए।' एक दिन हाथ की अंगूठी में अमलतास का फूल लगाए कक्षा में चली आईं, पता ही नहीं चलता फूल सुंदर है या उनके हाथों में आकर ज़्यादा सुंदर हो गया है। चांदी के वे कुंडल आज भी याद आते हैं जिनके बीच में गहरे गुलाबी रंग के पंख सजे होते थे लेकिन आकर्षण के ये आवरण उस प्रखर बौद्धिकता को कभी मद्धिम नहीं कर पाए जो मानस की आँच में तपी-ढली थी। जब वे पढ़ातीं तो स्वर के उतार-चढ़ाव से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता। हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'देवदारु' पढ़ना अविस्मरणीय अनुभव बन गया। उन दिनों इम्तिहान होने वाले थे। कक्षा में

छात्राएँ बहुत कम थीं। बहुत-से लोग घर बैठकर पढ़ाए पाठों को रटने में लगे थे। वे आज तक नहीं जान पाए होंगे कि वे कितने बड़े सौभाग्य से वंचित रह गए हैं। इन्दुजी कक्षा में आईं और करीब दो घंटे तक 'देवदारु' का पाठ चला। शब्द-शब्द उनकी आवाज़ में स्वयं अपने अर्थ खोलता हुआ। अपने जीवन की वे कक्षाएँ मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी जिनमें उनसे नई कविता पढ़ी थी। भवानी प्रसाद मिश्र की 'सतपुड़ा के जंगल' हो या 'गीत-फ़रोश'। कविता का पाठ कविता के अर्थ को संप्रेषित करने का पहला माध्यम है यह मैंने उन्हीं से सीखा। उनसे कविता पढ़ना कविता को जीना सीखने जैसा रहा है।

मुझे हमेशा लगता है कि इन्दुजी को कभी गुस्सा नहीं आता, फिर मैं अपने से पूछती हूं क्या सच ही कोई ऐसा हो सकता है जिसे गुस्सा न आता हो? इन्दुजी का गुस्सा तहों में रहता है। मुझे वह दिन आज भी याद है जब इन्दुजी हमारे विभाग की अध्यक्ष थीं। एक छात्रा के पिता उनसे मिलने आए थे। उस छात्रा की कक्षाओं में उपस्थिति कम थी। इसलिए उसे परीक्षा में बैठने से रोका जा रहा था। पिता को सूचित करने के लिए कॉलेज बुलाया गया था। पिता से जब पूछा गया कि उनकी बेटी कॉलेज क्यों नहीं आती तो पिता ने पुरुषोचित लापरवाही से कहा- 'जी मैं तो सुबह चला जाता हूँ। मुझे कुछ नहीं पता।' इन्दुजी इस ग़ैर-ज़िम्मेदारी भरे उत्तर के लिए तैयार न थीं। उन्होंने तपाक से कहा- 'आपको क्यों नहीं पता। आप पिता हैं उसके...।' उनकी आंखों में एक क्षण के लिए क्रोध की लाली, कमांडर की कठोरता और माँ की बेबसी का मिला-जुला भाव आया। भले ही अगले क्षण वे सहज हो गईं लेकिन यह गुस्सा बहुत-सी कविताओं में अवश्य फूटता रहा है। अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा-

'नहीं बनना चाहती मैं माँ/उन तमाम लड़कियों की/जिन्हें मैं पढ़ाती हूँ।'

वे पिता बनकर सब पिताओं को कतार में खड़ा कर देना चाहती हैं ताकि उनकी बेटियों से उनका परिचय करवा सकें। उनमें आने वाली पीढ़ी के प्रति गहरा दायित्व-बोध है। वे अपनी छात्राओं को जीवन के उल्लास से मित्रता करते देखना चाहती हैं। उनकी आंखों में तेज़ नेज़ों की चमक भर देना चाहती हैं जिससे रात रोशनी से पट जाए, इतिहास के खंडहर हँस पड़ें और अंतरिक्ष में नक्षत्र-अपनी जगह बदलने लगें।

इन्दुजी का अपनी छात्राओं से अलग-अलग संबंध रहा है। कोई उन्हें रोशनी कहता है कोई हवा। उनके व्यक्तित्व में ये दोनों ही तत्व हैं। हवा जैसा खुलापन- उन्होंने अपने लिए जो क्रिएटिव स्पेस चुना है वैसा ही स्पेस वे सामने वाले को भी हमेशा देती हैं। उनके इर्द-गिर्द महत्ता और विद्वत्ता का 'आलोक-छुआ अपनापन' महसूस किया जा सकता है। उनके संसर्ग में स्वतंत्र चिंतन की प्रेरणा है। उनका संस्पर्श पाकर उनके विद्यार्थी हों या साथी, अपनी दिशाएँ तलाशने और निर्मित करने को तत्पर होते हैं। मुझे कॉलेज में अपनी पहली वाद-विवाद प्रतियोगिता याद है जहाँ वे निर्णायक की कुर्सी पर आसीन थीं। वाद-विवाद में प्रथम पुरस्कार देते हुए उन्होंने मुस्कराकर धीरे से कहा था- 'अच्छा बोलीं लेकिन कुछ अधिक भावुक हो गईं।' इस पंक्ति में विश्वास पहले था और सुझाव बाद में और सुझाव भी ऐसा कि जीवन भर याद रहे- भावुकता बहुत बार रचनात्मकता को सोख लेती है। इन्दुजी बेहद संवेदनशील होते हुए भी सदा कोरी भावुकता से बचने का प्रयत्न करती रही हैं।

वे रोशनी भी हैं। नए विचारों की रोशनी। समय की तेज़ रफ्तार के साथ कदम मिलाए चलना बड़े-बड़ों के लिए कठिन है लेकिन इन्दुजी ने इस साधना को साध लिया है। इसीलिए अगली-पिछली पीढ़ियों से उनकी समान मित्रता है। वे छोटे-छोटे बच्चों को भी अपने मोह-पाश में बाँध सकती हैं। वे अपनी नातिनों की भी दोस्त हैं क्योंकि वे सहज ही उनके खेल में शामिल हो जाती हैं और उनको भी अपने किस्से-कहानियों के संसार में दाखिल कर लेती हैं। उन्होंने बच्चों को कभी बच्चा नहीं समझा- बच्चा यानी अबोध उनके लिए बच्चे बोध का एक अलग क्षेत्र हैं। शायद इसीलिए वे उन्हें उतना ही सम्मान देती हैं जितना बड़ों को। यह आपसी समझदारी, दूसरों में विश्वास और व्यक्ति का सम्मान आज के इस उपभोक्तावादी बाज़ार में बहुत संभालकर रखने की चीज़ है। इन्दुजी तमाम आकर्षणों और दबावों के बीच इसे बचा पाई हैं तो यह भी कम जोखिम-भरा नहीं रहा होगा। खैर, इसका रहस्य मैंने उनसे कभी पूछा नहीं।

इन्दुजी का घर हमारे लिए बिल्कुल अलग दुनिया की तरह था। वहाँ की एक-एक चीज़ हमें विस्मित करती। घर के बाहर अर्ध-चन्द्र के आकार का शीशा... जैसे चाँद उनके घर में उतर आया हो। कुछ पत्थर के टुकड़े लकड़ी के छोटे-छोटे खाँचों में रोशनी के खास ऐंगल पर रखे हुए ऐसे लगते थे कि अभी बोल उठेंगे। इन्दुजी इनका श्रेय जैन साहब को देती हैं। वे अक्सर जब घूमने जाते तो रास्ते में पड़े पत्थर उनसे कुछ कहते और वे उन्हें उठा लाते। घर के अलग-अलग कोने उन निर्जीव पत्थरों से जीवंत हो उठे थे। जैन साहब और इन्दुजी दोनों ही में वह संवेदनशीलता है जो ठोस अनगढ़ पत्थरों में जीवन की आकृतियाँ तलाश लेती है। शायद इसीलिए इतनी व्यस्त होते हुए भी उन्होंने अपनी अनगढ़ छात्राओं को तराशने, संवारने और गढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे कॉलेज-परिसर में रहती थीं और हमें यह

अधिकार था कि जब-तब उनके घर की घंटी बजा दें। उनके घर में दीवारों पर ऊपर तक चढ़ी उनकी लायब्रेरी से पुस्तकें निकालें, पढ़ें और अपने मानसिक क्षितिज का विस्तार करें। कभी-कभी वे स्वयं भी कहतीं- 'यह नई किताब आई है पढ़कर देखो।' यही असली पढ़ाई थी- पाठ्यक्रम के तंग दायरों से बाहर, साहित्य की बारीकियों से सीधी मुठभेड़ और सीधा संवाद जो इन्दुजी के कारण ही संभव हुआ।

इन्दुजी से जो आत्मीयता मिली है उस पर जब सोचती हूँ तो सहज विश्वास नहीं होता। यद्यपि हम उनके यहाँ खूब आते-जाते थे। पूछते-बतियाते थे। वे हमारी बातों पर खुलकर हँसतीं, हमारे प्रश्नों के गंभीरता से उत्तर देतीं, हमारे लिखे हुए को कड़ी नज़र से जाँचतीं-सुधारतीं, उत्तर-पुस्तिकाओं पर सटीक टिप्पणियाँ लिखतीं; साथ ही कहीं बीच में हमारे मन में अनचीन्हे सवालों की सुगबुगाहट जगा देतीं। हमारी जिन्दगियों में उनकी जगह वही है जो पौधे के लिए खाद की होती है। उन्होंने हमारी जड़ों को ताकत दी है। उन्होंने कभी हरे पेड़ का ऐसा घना साया बनने की कोशिश नहीं की जो सुरक्षा और आश्रय तो देता है लेकिन संघर्ष करने की ऊर्जा नहीं। इसलिए आत्मीयता के साथ एक दूरी भी थी। हम उन तक पहुंच सकते थे फिर भी उनके इर्द-गिर्द एक प्रभामंडल बना ही रहता जो अभिभूत करता, आकर्षित भी लेकिन उसके पास जाना शायद कभी संभव नहीं हुआ।

इस गुरु-गंभीर रूप के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा मौज-मस्तीभरा और काफी रंगीन भी है। जिसने उनका गद्य 'झुरमुट' पढ़ा है वह कुछ-कुछ उनके इस पक्ष से परिचित होगा। कोई भी खूबसूरत चीज़ उन्हें 'बावला' कर सकती है। इस शब्द का चुनाव बहुत सोचकर कर रही हूँ। मैंने देखा है- देश-विदेश में पर्यटन के सुंदर स्थल हों, पर्वतों की चोटियाँ, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, इठलाती नदियाँ, गहरे समुद्र, चहकती चिड़ियाँ या अनार कुतरने पेड़ पर चढ़ती गिलहरी- ये सब देखते ही उनकी आँखों में अजब चमक आ जाती है और प्रकृति के रंगों के साथ जैसे उनका मन झूम उठता है। ये क्षण उनकी मुक्ति के क्षण होते हैं जब रोम-रोम से दीवानगी-भरा उन्माद फूट पड़ता है। यही हालत तब होती है जब वे कोई अच्छा नाटक देखें या संगीत के जादू में सराबोर हो जाएँ। ऐसे क्षणों में उनके संभ्रांत व्यक्तित्व में एक देसी ठसक जाग उठती है। वैसे मस्ती के क्षणों में वे खुद भी बहुत अच्छा गाती हैं और कभी देखा तो नहीं लेकिन लगता है कभी नाच उठें तो पैर ही नहीं थमेंगे और कभी मंच पर आ जाएँ तो नाटक और अभिनय के प्रतिमान स्वयं उनके कदमों में पड़े मिलेंगे।

कॉलेज के दिनों में इन्द्रप्रस्थ कॉलेज की एक परंपरा थी कि सभी प्राध्यापक मिलकर तृतीय वर्ष की छात्राओं को विदाई देते। उस कार्यक्रम का स्टार-एट्रैक्शन नाटक और कव्वाली होते जिसे प्राध्यापिकाएँ ही लिखतीं और फिर मंचित करतीं। तमाम व्यस्तताओं के बावजूद इन्दुजी उसमें बढ़-चढ़कर भाग लेतीं। पुराने फिल्मी गानों की धुनों पर कसी गई कव्वाली में अनेक टुकड़े रहते जिनका कथ्य कॉलेज की ज़िन्दगी और लड़कियों के सपनों से जुड़ा रहताा। हमारे समय में जो कव्वाली गाई गई थी उसके मुखड़े की पंक्तियाँ आज भी कानों में गूँजती हैं-

'नजर लागी राजा कॉलेज के गेट पे/जहाँ खड़े हैं बॉयफ्रेंड मेरी ही वेट में'

नोक-झोंक भरे ऐसे गीत उनकी प्रेरणा बने होंगे जब उन्होंने 'चश्मे बद्दूर' फिल्म के गीत लिखे होंगे। 'काली घोड़ी द्वार खड़ी. ..' में कॉलेज के गेट पर मोटरसाइकिलों की भीड़ नए समय में प्रियतम की नई घोड़ी का संकेत ही तो देती थी। फिल्मों में उन्होंने जो लेखन किया उसमें एक विलक्षण विट है। शरारत-भरे चुस्त टुकड़े, भाषा से ऐसी छेड़-छाड़ एक अलग इन्दु जैन का परिचय देती है। इस हिस्से पर भी उनकी गहरी छाप है।

कुछ और चित्र:

उन दिनों वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की महत्वपूर्ण कृति 'गीतांजलि' का हिन्दी में अनुवाद कर रही थीं। हम तब उनसे प्रेमचंद पर विशेष पेपर पढ़ रहे थे। इम्तिहान की तैयारी के रूप में बहुत-से प्रश्न लेकर मैं उनके यहाँ पहुँच गई। कुछ देर तक बातचीत के बाद मैंने आखिरी सवाल दागा- 'प्रेमचंद और रवीन्द्रनाथ के मानवतावाद में क्या अंतर है?' वे इस प्रश्न के लिए शायद तैयार नहीं थीं। कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गईं। फिर गंभीर आवाज में बोलीं, 'ममी से पूछकर बताऊँगी।' गीतांजलि का अनुवाद करने मात्र से ही वे स्वयं को रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अधिकारी विद्वान नहीं मानती थीं लेकिन अपनी अल्पज्ञ छात्रा के सम्मुख यह स्वीकार करने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं हुआ।

वैसे वे बहुत सुव्यवस्थित हैं। हर काम सलीके से करना पसंद करती हैं। अक्सर काम शुरू करने से पहले हर काम की सूची बनने लगती है। उससे बहुत-सी सुविधाएँ होती हैं और कुछ मजेदार वाकये भी। उनके पहले काव्य-संग्रह 'चौंसठ कविताएँ' के आवरण पर ऐसी ही एक सूची छपी हुई है। इससे भी ज्यादा मजे की बात यह है कि इस सारे नियोजित आवरण के पीछे एक बहुत भुलक्कड़ व्यक्तित्व भी है। वे इसीलिए हर बात लिख लेतीं कि

कहीं भूल न जाऊँ। एक बार मैंने उनसे कहा कि याददाश्त तेज करने की कोई दवा आती है, मैं पता करके आपको बताऊँगी। कुछ दिन बाद जब हम मिले और मैंने इसी संदर्भ में उनसे कहा कि वो पता चल गया है तब वे उसी अबोध भाव से बोलीं, 'किस बारे में?'

वे कलाप्रेमी ही नहीं, स्वयं कलाकार भी हैं। उनकी कलात्मक बिंदियों के बारे में तो बहुत-से लोग जानते होंगे क्योंकि इन पर अक्सर उनसे सवाल पूछे जाते थे लेकिन यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि वे बाँधनी की साड़ियाँ रंग सकती हैं, सिलाई मशीन चलाकर अपनी तरह के डिजाइनर कपड़े तैयार कर सकती हैं; बगीचे में डंडी गाड़कर उस पर हुक्के की चिलम टिका उसमें फूल खिला सकती हैं...सच, यह सब भी उनके लिए कविता करने जैसा ही है।

साहित्य के उद्देश्य को लेकर हमने सदा ही रचना और रचनाकारों को जनवादी और कलावादी खेमों में बाँटकर देखा है। ऐसे समय में इन्दुजी के व्यक्तित्व और लेखन की सार्थकता इस बात में है कि वे इन सीमांतों के बीच पुल बनती हैं। उनकी बानगी अभिजातवादी है और सरोकार जनवादी। उनकी कविता में भी विविध स्वर हैं- भाव, भाषा और बिम्बों की ऐसी छटा जो कहीं रूढ़ नहीं होती। लीक की तरह चली आतीं परंपराओं पर चलने का आसान रास्ता उन्होंने कभी नहीं चुना। उनकी कविता सही मायनों में प्रयोगधर्मी है। समय के लंबे अंतराल में उन्होंने अपने लिए साहित्य के मानदंड स्थिर किए और निरंतर आगे बढ़ते हुए उनमें परिवर्तन करते हुए उन्हें गतिशील बनाए रखा। उनकी कविता अरूप से रूप की ओर बढ़ी हैं। उनकी कविताएँ ठोस संदर्भों से जुड़ते हुए अपने समय का पारदर्शी चेहरा पूरे खरेपन के साथ अभिव्यक्त करती हैं। संघर्ष का तेवर उनके यहाँ केवल मुद्रा के स्तर पर नहीं है बल्कि व्यक्ति की जुझारू संकल्पशक्ति में अटल विश्वास के रूप में है। यह काव्ययात्रा अभी भी मंद नहीं पड़ी है। उसकी रोशनी लगातार नए स्वरों की पहचान में संलग्न है। यह स्वर रागमय हो, भावमय हो और ज्ञान की प्रखर तेजस्विता से तप्त होकर साहित्य और जीवन का अविस्मरणीय स्पंदन बने। इसी कामना के साथ...।

ए-3, स्टाफ़ फ्लैट्स, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, शामनाथ मार्ग,
दिल्ली-110054

इन्दु जैन की प्रकाशित पुस्तकें

कविता-संग्रह

1. चौंसठ कविताएं (1964)
2. आंख से भी छोटी चिड़िया (1977)
3. हमसे पहले भी लोग यहां थे (1980)
4. अ किस इज़ अ व्हिम (1981) अनूदित अंग्रेजी कविता-संग्रह)
5. 'गीतांजलि' का सहअनुवाद (1986)
6. कितनी अवधि (1986),
7. बुनती आवाज़ें (1988)
8. इन मोनोक्रोम (1988), (अनूदित अंग्रेजी कविता संग्रह)
9. कोना तेरा कौन सा (1991)
10. यहां कुछ हुआ तो था (1994)
11. सबूत क्यों चाहिए (1999)
12. कुछ न कुछ टकराएगा ज़रूर (2004)

गद्य :

1. झुरमुट (1977) (ललित निबंध)
2. रोज़नामचा (1981) (समसामयिक व ललित निबंध)
3. पत्तों की तरह चुप (1988) (यात्रा)
4. सरोज़िनी नायडू (1991)